8

राज्य के नीति निदेशक तत्व
(Directive Principles of State Policy)

राज्य नीति के निदेशक तत्वों का उल्लेख संविधान के भाग चार के अनुच्छेद 36 से 51 तक[1] में किया गया है। संविधान निर्माताओं ने यह विचार 1937 में निर्मित आयरलैंड के संविधान से लिया। आयरलैंड के संविधान में इसे स्पेन के संविधान से ग्रहण किया गया था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने इन तत्व को 'विशेषता' वाला बताया है। मूल अधिकारों के साथ निदेशक तत्व, संविधान की आत्मा एवं दर्शन हैं। ग्रेनविल ऑस्टिन ने निदेशक तत्व और अधिकारों को 'संविधान की मूल आत्मा'[2] कहा है।

निदेशक तत्वों की विशेषताएं

1. 'राज्य की नीति के निदेशक तत्व, नामक इस उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि नीतियों एवं कानूनों को प्रभावी बनाते समय राज्य इन तत्वों को ध्यान में रखेगा। ये संवैधानिक निदेश या विधायिका, कार्यपालिका और प्रशासनिक मामलों में राज्य के लिए सिफारिशें हैं। अनुच्छेद 36 के अनुसार भाग 4 में ''राज्य'' शब्द का वही अर्थ है, जो मूल अधिकारों से संबंधित भाग 3 में है। इसलिए यह केन्द्र और राज्य सरकारों के विधायिका और कार्यपालिका अंगों, सभी स्थानीय प्राधिकरणों और देश में सभी अन्य लोक प्राधिकरणों को सम्मिलित करता है।
2. निदेशक तत्व भारत शासन अधिनियम, 1935 में उल्लेखित अनुदेशों के समान हैं। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के शब्दों में निदेशक तत्व अनुदेशों के समान हैं, जो भारत शासन अधिनियम, 1935 के अंतर्गत ब्रिटिश सरकार द्वारा गवर्नर जनरल और भारत की औपनिवेशिक कालोनियों के गवर्नरों को जारी किए जाते थे। जिसे निदेशक तत्व कहा जाता है, वह इन अनुदेशों का ही दूसरा नाम है। इनमें केवल यह अंतर है कि निदेशक तत्व विधायिका और कार्यपालिका के लिए अनुदेश हैं।
3. आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में आर्थिक, सामाजिक और राजनीति विषयों में निदेशक तत्व महत्वपूर्ण हैं। इनका उद्देश्य न्याय में उच्च आदर्श, स्वतंत्रता, समानता बनाए रखना है। जैसा कि संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित है। इनका उद्देश्य 'लोक कल्याणकारी राज्य' का निर्माण है न कि 'पुलिस राज्य' जो कि उपनिवेश काल[3] में था। संक्षेप में आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र की स्थापना करना ही इन निदेशक तत्वों का मूल उद्देश्य है।
4. निदेशक तत्वों की प्रकृति गैर-न्यायोचित है। यानी कि उनके हनन पर उन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता। अत: सरकार (केंद्र राज्य एवं स्थानीय) इन्हें लागू

करने के लिए बाध्य नहीं हैं। संविधान (अनुच्छेद 37) में कहा गया है। निदेशक तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

5. यद्यपि इनकी प्रकृति गैर-न्यायोचित है तथापि कानून की संवैधानिक मान्यता के विवरण में न्यायालय इन्हें देखता है। उच्चतम न्यायालय ने कई बार व्यवस्था है कि किसी विधि की सांविधानिकता का निर्धारण करते समय यदि न्यायालय यह पाए कि प्रश्नगत विधि निदेशक तत्व को प्रभावी करना चाहती है तो न्यायालय ऐसी विधि को अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 के संबंध में तर्कसंगत मानते हुए असंविधानिकता से बचा सकता है।

निदेशक तत्वों का वर्गीकरण

हालांकि संविधान में इनका वर्गीकरण नहीं किया गया है लेकिन इनकी दशा एवं दिशा के आधार पर इन्हें तीन व्यापक श्रेणियों—समाजवादी, गांधीवादी और उदार बुद्धिजीवी में विभक्त किया गया है:

समाजवादी सिद्धांत

ये सिद्धांत समाजवाद के आलोक में हैं। ये लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य का खाका खीचते हैं, जिनका लक्ष्य सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान कराना है। ये लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये राज्य को निर्देश देते हैं कि:

1. लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय द्वारा सामाजिक व्यवस्था सुनिश्चित करना- और आय, प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को समाप्त करना[4] (अनुच्छेद 38)।
2. सुरक्षित करना—(क) सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार, (ख) सामूहित हित के लिए समुदाय के भौतिक संसाधनों का सम वितरण, (ग) धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण रोकना, (घ) पुरूषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन, (ङ) कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों को अवस्था के दुरुपयोग से संरक्षण, (च)बालकों को स्वास्थ्य विकास के अवसर[5] (अनुच्छेद 39)।
3. समान न्याय एवं गरीबों को नि:शुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराना[6] (अनुच्छेद 39क)।
4. काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकरी बुढ़ापा बीमारी और नि:शक्तता की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को संरक्षित करता (अनुच्छेद 41)।
5. काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध करना (अनुच्छेद 42)।
6. सभी कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी[7], शिष्ट जीवन स्तर तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर (अनुच्छेद 43)।
7. उद्योगों के प्रबंध[8] में कर्मकारों के भाग लेने के लिए कदम उठाना (अनुच्छेद 43 क)।
8. पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को ऊंचा करना तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करना (अनुच्छेद 47)।

गांधीवादी सिद्धांत

ये सिद्धांत गांधीवादी विचारधारा पर आधारित हैं। ये राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी द्वारा पुनर्स्थापित योजनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांधीजी के सपनों को साकार करने के लिए उनके कुछ विचारों को निदेशक तत्वों में शामिल किया गया है। ये राज्य से अपेक्षा करते हैं:

1. ग्राम पंचायतों का गठन और उन्हें आवश्यक शक्तियां प्रदान कर स्व-सरकार की इकाई के रूप में कार्य करने की शक्ति प्रदान करना (अनुच्छेद 40)।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों व्यक्तिगत या सहकारी के आधार पर कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन (अनुच्छेद 43)।
3. सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त संचालन, लोकतांत्रिक निमंत्रण तथा व्यावसायिक प्रबंधन को बढ़ावा देना (अनुच्छेद 43 B)।
4. अनुसूचित जाति एवं जनजाति और समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक एवं आर्थिक हितों को प्रोत्साहन और सामाजिक अन्याय एवं शोषण से सुरक्षा (अनुच्छेद 46)।
5. स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक नशीली दवाओं, मदिरा, ड्रग के औषधीय प्रयोजनों से भिन्न उपभोग पर प्रतिबंध (अनुच्छेद 47)।
6. गाय, बछड़ा व अन्य दुधारू पशुओं की बलि पर रोक और उनकी नस्लों में सुधार को प्रोत्साहन (अनुच्छेद 48)।

उदार बौद्धिक सिद्धांत

इस श्रेणी में उन सिद्धांतों को शामिल किया है जो उदारवादिता की विचारधारा से संबंधित हैं। ये राज्य को निर्देश देते हैं:

1. भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता (अनुच्छेद 44)।
2. सभी बालकों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देना[9] (अनुच्छेद 45)।
3. कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से करना (अनुच्छेद 48)।
4. पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा[10] (अनुच्छेद 48A)।
5. राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले संस्मारक या स्थान या वस्तु का संरक्षण करना (अनुच्छेद 49)।
6. राज्य की लोक सेवाओं में, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक् करना (अनुच्छेद 50)।
7. अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि करना तथा राष्ट्रों के बीच न्यायपूर्ण और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखना, अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाना और अंतर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थ द्वारा निपटाने के लिए प्रोत्साहन देना (अनुच्छेद 51)।

नए निदेशक तत्व

42वें संशोधन अधिनियम 1976 में निदेशक तत्व की मूल सूची में 4 तत्व और जोड़े गए। इनकी भी राज्य से अपेक्षा रहती है:

1. बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए अवसरों को सुरक्षित करना (अनुच्छेद 39)।
2. समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए और गरीबों को मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए (अनुच्छेद 39A)
3. उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी को सुरक्षित करने के लिए कदम उठाने के लिए (अनुच्छेद 43A)
4. रक्षा और पर्यावरण को बेहतर बनाने और जंगलों और वन्य जीवन की रक्षा करने के लिए (अनुच्छेद 48A)

44वां संशोधन अधिनियम 1978 एक और निदेशक तत्व को जोड़ता है जो राज्य से अपेक्षा रखता है कि वह आय, प्रतिष्ठा एवं सुविधाओं के अवसरों में असमानता को समाप्त करे (अनुच्छेद 38)।

86वें संशोधन अधिनियम, 2002 में अनुच्छेद 45 की विषय-वस्तु को बदला गया और प्राथमिक शिक्षा को अनुच्छेद 21 क के तहत मूल अधिकार बनाया गया। संशोधित निदेशक तत्वों में राज्य से अपेक्षा की गई है कि वह बचपन देखभाल के अलावा सभी बच्चों को 6 वर्ष की आयु तक नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराएगा।

सहकारी समितियों से सम्बन्धित एक नया 97वाँ संशोधन अधिनियम 2011 द्वारा सहकारी समितियों से सम्बन्धित एक नया नीति-निदेशक सिद्धांत जोड़ा गया है। इसके अंतर्गत राज्यों से यह अपेक्षा की गई है कि वे सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त संचालन, लोकतांत्रिक निमंत्रण तथा व्यावसायिक प्रबंधन को बढ़ावा दें (अनुच्छेद 43B)।

निदेशक सिद्धांतों के पीछे संस्तुति

संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बी.एन. राव ने इस बात की संस्तुति की थी कि वैयक्तिक अधिकार को दो श्रेणियों—न्यायोचित एवं गैर-न्यायोचित में बांटा जाना चाहिए, जिसे प्रारूप समिति द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस तरह न्यायोचित प्रकृति वाले मूल अधिकारों को भाग तीन में उल्लिखित किया गया और गैर-न्यायोचित निदेशक तत्व को संविधान के भाग-4 में रखा गया।

यद्यपि निदेशक तत्व गैर-न्यायोचित हैं तथापि संविधान (अनुच्छेद 37) में इस बात को स्पष्ट किया गया कि 'ये तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं, अत: यह राज्य का कर्तव्य होगा कि इन तत्व का विधि बनाने में प्रयोग करे।' अत: यह इनके अनुप्रयोग हेतु राज्य प्राधिकारियों पर नैतिक दायित्व अभ्यारोपित करता है, परन्तु इसके पीछे वास्तविक शक्ति राजनीतिक है अर्थात् जनमत। अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कहा था-लोगों के लिए उत्तरदायी कोई भी मंत्रालय संविधान के भाग-4 में वर्णित उपबंधों अवहेलना नहीं कर सकता। इसी प्रकार डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि लोकप्रिय मत पर कार्य करने वाली सरकार इसके लिए नीति बनाते समय निदेशक तत्वों की अवहेलना नहीं कर सकती। यदि कोई सरकार इनकी अवहेलना करती है तो निर्वाचन समय में उसे मतदाताओं के समक्ष इसका उत्तर अवश्य देना होगा।'[11]

संविधान निर्माताओं ने निदेशक सिद्धांतों को गैर-न्यायोचित एवं विधि रूप से लागू करने की बाध्यता वाला नहीं बनाया क्योंकि

1. देश के पास उन्हें लागू करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं थे।
2. देश में व्यापक विविधता एवं पिछड़ापन इनके क्रियान्वयन में बाधक होगा।
3. स्वतंत्र भारत को नए निर्माण के कारण इसे कई तरह के भारों से मुक्त रखना होगा ताकि उसे इस बात के लिए

स्वतंत्र रखा जाए कि उनके क्रम, समय, स्थान एवं पूर्ति का निर्णय लिया जा सके।

इसलिए संविधान निर्माताओं ने तत्व को प्रस्तुत करने के लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया और इन तत्वों में शक्ति निहित नहीं की। उन्होंने न्यायालयी प्रक्रिया से ज्यादा जागरूक जनता के मतों में विश्वास प्रकट किया।[12]

निदेशक तत्वों की आलोचना

संविधान सभा के कुछ सदस्यों एवं अन्य संवैधानिक एवं राजनीतिक विशेषज्ञों ने राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की निम्नलिखित आधार पर आलोचना की है:

1. कोई कानूनी शक्ति नहीं

मुख्यत: इनके गैर-न्यायोचित चरित्र के कारण इनकी आलोचना की गई, जबकि के.टी. शाह ने इसे 'अतिरेक कर्मकांडी' बताया और इसकी तुलना 'एक चेक जो बैंक में है, उसका भुगतान बैंक संसाधनों[13] की अनुमति पर ही संभव' से की। नसीरुद्दीन ने इनके लिए कहा—''ये सिद्धांत नव वर्ष प्रस्तावों की तरह हैं, जो जनवरी को टूट जाते हैं।'' यहां तक कि टी.टी. कृष्णमचारी ने इनके लिए कहा—''भावनाओं का एक स्थायी कूड़ाघर।'' के.सी. व्हेयर ने इन्हें ''लक्ष्य एवं आकांक्षाओं का घोषणा-पत्र'' कहा और इन्हें धार्मिक उपदेश बताया तथा सर आइवर जेनिंग्स इन्हें 'कर्मकांडी आकांक्षा' कहते हैं।

2. तर्कहीन व्यवस्था

आलोचकों ने मत दिया कि इन निदेशकों को तार्किक रूप में निरंतरता के आधार पर व्यवस्थित नहीं किया गया है। एन. श्रीनिवासन के अनुसार, ''इन्हें न तो उचित तरीके से वर्गीकृत किया गया है और न ही तर्कसंगत तरीके से व्यवस्थित किया गया है। इनकी घोषणा कम महत्व के मुद्दों को अति आवश्यक आर्थिक एवं सामाजिक मुद्दों से मिलाती है। यह एक ही तरीके से आधुनिक एवं पुरातन को जोड़ती है। इस व्यवस्था के लिए वैज्ञानिक आधार सुझाया जाता है, जबकि ये भावनाओं एवं बिना पर्याप्त जानकारी के आधार पर आधारित हैं।[14] सर आइवर जेनिंग्स ने इस ओर संकेत दिए कि इन तत्वों का कोई नियमित प्रतिमान दर्शन नहीं है।

3. रूढ़िवादी

सर आइवर जेनिंग्स के अनुसार, ये निदेशक तत्व 19वीं सदी के इंग्लैंड के राजनीतिक दर्शन पर आधारित हैं। उन्होंने टिप्पणी की कि सिडनी वेब और बिट्रिश वेब के भूत इस पाठ के पृष्ठों में प्रवेश कर गए हैं। संविधान के भाग चार में व्याख्यायित किया गया है कि 'समाजवाद के बिना फेबियन समाजवाद'। उन्होंने मत दिया कि ये तत्व भारत में 20वीं सदी के मध्य में ज्यादा उपयोगी सिद्ध होंगे। इस प्रश्न का कि—क्या वे 21वीं सदी में उपयोगी नहीं होंगे ? का जवाब नहीं दिया गया। लेकिन यह तय है कि वे अप्रचलित होंगे।[15]

4. संवैधानिक टकराव

के. संथानम का मत है कि इन तत्वों से केंद्र एवं राज्यों के बीच राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री के बीच और राज्यपाल एवं मुख्यमंत्री के बीच संवैधानिक टकराव होगा। उनके अनुसार, केंद्र इन तत्वों को लागू करने के लिए राज्यों को निर्देश दे सकता है और इनके लागू न होने पर वह राज्य सरकार को बर्खास्त कर सकता है। इसी प्रकार जब प्रधानमंत्री को संसद द्वारा यथापारित विधेयक (जो निदेशक तत्वों का उल्लंघन करता हो) प्राप्त हो तो राष्ट्रपति विधेयक को इस आधार पर अस्वीकृत कर सकता है कि ये तत्व राष्ट्र के शासन के लिए मूलभूत हैं और इसलिए मंत्रालय को इन्हें नकारने का कोई अधिकार नहीं। इसी तरह का संवैधानिक टकराव राज्य स्तर पर राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच भी उत्पन्न हो सकता है।

निदेशक तत्वों की उपयोगिता

उपरोक्त कमियों और आलोचनाओं के बावजूद संविधान से जुड़ाव के संदर्भ में नीति निदेशक तत्व आवश्यक हैं। संविधान में स्वयं भी उल्लिखित है की ये राष्ट्र के शासन हेतु मूलभूत हैं। जाने-माने निर्णायक एवं कूटनीतिज्ञ एल.एम. सिंघवी के अनुसार, निदेशक तत्व, संविधान को जीवनदान देने वाली व्यवस्थाएं हैं। संविधान के आवरण और सामाजिक न्याय में इसका दर्शन दिया है।''[16] भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम.सी. चागला के मतानुसार ''यदि इन सभी तत्व का पूरी तरह पालन किया जाए तो हमारा देश, पृथ्वी पर स्वर्ग की भांति लगने लगेगा।'' भारत राजनीतिक मामले में तब न केवल लोकतांत्रिक होगा बल्कि नागरिकों के कल्याण के हिसाब से कल्याणकारी राज्य भी होगा।''[17] डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने इस ओर संकेत किया कि निदेशक तत्वों का बहुत बड़ा मूल्य है। ये भारतीय राजव्यवस्था के लक्ष्य 'आर्थिक लोकतंत्र' को निर्धारित करते हैं जैसा कि 'राजनीतिक लोकतंत्र' प्रकट होता है। ग्रेनविल ऑस्टिन का कहना है कि ''निदेशक तत्वों का लक्ष्य, सामाजिक क्रांति एवं आवश्यक शर्तों को स्थापित कर उनको ग्रहण करने के

समान हैं।'[18] संविधान सभा के सलाहकार सर बी.एन. राव ने निदेशक तत्वों को 'राज्य प्राधिकारियों के लिए नैतिक आवश्यकता एवं शैक्षिक मूल्य वाला' बताया है।

भारत के पूर्व महान्यायवादी एम.सी. सीतलवाड के अनुसार, निदेशक तत्व हालांकि कोई विधिक अधिकार एवं कोई कानूनी उपचार नहीं बताते, फिर भी वे निम्नलिखित मामलों में उल्लेखनीय एवं लाभदायक हैं:

1. ये 'अनुदेशों' की तरह हैं या ये भारतीय संघ के अधिकृतों को संबोधित सामान्य संस्तुतियां हैं। ये उन्हें उन सामाजिक एवं आर्थिक मूल सिद्धांतों की याद दिलाते हैं, जो संविधान के लक्ष्यों की प्राप्ति से जुड़े हैं।
2. ये न्यायालयों के लिए उपयोगी मार्गदर्शक हैं। ये न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में सहायता करते हैं, जो कि विधि कि संवैधानिक वैधता के निर्धारण वाली शक्ति होती है।
3. ये सभी राज्य क्रियाओं की विधायिका या कार्यपालिका के लिए प्रभुत्व पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं और न्यायालयों को कुछ मामलों में दिशा-निदेर्शित भी करते हैं।
4. ये प्रस्तावना को विस्तृत रूप देते हैं, जिनसे भारत के नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के प्रति बल मिलता है।

ये निम्नलिखित भूमिकायें भी अदा करते हैं:

1. ये राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों की घरेलू और विदेशी नीतियों में स्थायित्व और निरंतरता बनाए रखते हैं, भले ही सत्ता में परिवर्तन हो जाए।
2. ये नागरिकों के मूल अधिकारों के पूरक होते हैं। ये भाग तीन में, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था करते हुए रिक्तता को पूरा करते हैं।
3. मूल अधिकारों के अंतर्गत नागरिकों द्वारा इनका क्रियान्वयन पूर्ण एवं उचित लाभ के पक्ष में माहौल उत्पन्न करता है। राजनीतिक लोकतंत्र बिना आर्थिक लोकतंत्र का कोई अर्थ नहीं होता।
4. ये विपक्ष द्वारा सरकार पर नियंत्रण को संभव बनाते हैं। विपक्ष, सत्तारूढ़ दल पर निदेशक तत्वों का विरोध एवं इसके कार्यकलापों के आधार पर आरोप लगा सकता है।
5. ये सरकार के प्रदर्शन की कड़ी परीक्षा करते हैं। लोग सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का परीक्षण इन संवैधानिक घोषणाओं के आलोक में कर सकते हैं।
6. ये आम राजनीतिक घोषणा-पत्र की तरह होते हैं 'एक सत्तारूढ़ दल अपनी राजनीतिक विचारधारा के बावजूद विधायिका एवं कार्यपालिक कृत्यों में इस तथ्य को स्वीकार करता है कि ये तत्व इसके प्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र हैं।[19]

मूल अधिकारों एवं निदेशक तत्वों में टकराव

एक ओर मूल अधिकारों की न्यायोचितता और निदेशक तत्वों की गैर-न्यायोचितता तथा दूसरी ओर निदेशक तत्वों (अनुच्छेद 37) को लागू करने के लिए राज्य की नैतिक बाध्यता ने दोनों के मध्य टकराव को जन्म दिया है। यह स्थिति संविधान लागू होने के समय से ही है। *चम्पाकम दोराइराजन मामले* (1951)[20] में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी थी कि निदेशक सिद्धांत एवं मूल अधिकारों के बीच किसी तरह के टकराव में मूल अधिकार प्रभावी होंगें। इसमें घोषणा की गयी है कि निदेशक सिद्धांत, मूल अधिकारों के पूरक के रूप में निश्चित रूप से लागू होंगे। लेकिन यह भी तय हुआ कि मूल अधिकारों को संसद द्वारा संविधान संशोधन प्रक्रिया के तहत संशोधित किया जा सकता है। इसी के फलस्वरूप संसद ने प्रथम संशोधन अधिनियम (1951), चौथा संशोधन अधिनियम (1955) एवं सत्रहवां संशोधन अधिनियम (1964) द्वारा कुछ निर्देशों में लागू किया।

उपरोक्त परिस्थिति में 1967 में उच्चतम न्यायालय के फैसले में *गोलकनाथ मामले*[21] से एक व्यापक परिवर्तन हुआ। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी कि संसद किसी मूल अधिकार, जो अपनी प्रकृति में उल्लंघनीय है को समाप्त नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में, निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता।

संसद ने *गोलकनाथ मामले* (1967) पर उच्चतम न्यायालय के फैसले पर 24वें संशोधन अधिनियम (1971) एवं 25वें संशोधन अधिनियम (1971) के द्वारा प्रतिक्रिया व्यक्त की। 24वें संशोधन अधिनियम में घोषणा की गई कि संसद को यह अधिकार है कि वह संवैधानिक संशोधन अधिनियम के तहत मूल अधिकारों को समाप्त करे या कम कर दे। 25वें संशोधन अधिनियम के तहत एक नया अनुच्छेद 31ग जोड़ा गया, जिसमें निम्नलिखित व्यवस्थाएं की गईः

1. अनुच्छेद 39 (ख)[22] और (ग)[23] में वर्णित समाजवादी निदेशक तत्वों को लागू कराने वाली किसी विधि को इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता कि वह अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण), अनुच्छेद 19 (वाक् स्वतंत्रय, सम्मेलन, संचरण के संबंध में छह अधिकारों का संरक्षण) या अनुच्छेद 31 (संपत्ति का अधिकार) द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन है।
2. ऐसी नीति को प्रभावी बनाने की घोषणा करने वाली किसी भी विधि को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह ऐसी नीति को प्रभावी नहीं करता।

केशवानंद भारतीय केस[24] (1973) में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 31ग के उपरोक्त दूसरे प्रावधान को इस आधार पर असंविधानिक और अवैध घोषित किया कि न्यायिक समीक्षा संविधान की मूल विशेषता है और इसलिए इससे इसे नहीं छीना जा सकता। हालांकि अनुच्छेद 31ग के उपरोक्त प्रथम प्रावधान को संवैधानिक एवं वैध माना गया है।

42वें संविधान अधिनियम (1976) में उपरोक्त अनुच्छेद 31ग की पहली व्यवस्था के प्रावधानों को विस्तारित किया गया। इसमें न केवल अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में वर्णित को किसी निदेशक तत्व को लागू करने वाली विधि को अपने संरक्षण में सम्मिलित किया गया। दूसरे शब्दों में, 42वें संशोधन अधिनियम में निदेशक तत्व की प्राथमिकता एवं सर्वोच्चता को मूल अधिकारों पर प्रभावी बनाया गया। उन अधिकारों पर, जिनका उल्लेख अनुच्छेद 14, 19 एवं 31 में है। हालांकि इस विस्तार को उच्चतम न्यायालय द्वारा *मिनर्वा मिल्स मामले*[25] (1980) में असंवैधानिक एवं अवैध घोषित किया गया। इसका तात्पर्य है कि निदेशक तत्व को एक बार फिर मूल अधिकारों के अधीनस्थ बताया गया। लेकिन अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 19 द्वारा स्थापित मूल अधिकारों को अनुच्छेद 39(ख) और (ग) में बताए गए निदेशक तत्व के अधीनस्थ माना गया। अनुच्छेद 31 (संपत्ति का अधिकार) को 44वें संशोधन अधिनियम (1978) द्वारा समाप्त कर दिया गया।

मिनर्वा मिल्स मामले (1980) में उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी कि 'भारतीय संविधान मूल अधिकारों और निदेशक तत्वों के बीच संतुलन के रूप में है। ये आपस में सामाजिक क्रांति के वादे से जुड़े हुए हैं। ये एक रथ के दो पहियों के समान हैं तथा एक-दूसरे से कम नहीं हैं। इन्हें एक-दूसरे पर लादने से संविधान की मूल भावना बाधित होती है। मूल भावना और संतुलन संविधान के बुनियादे ढांचे की आवश्यक विशेषता है। निदेशक तत्वों के तय लक्ष्यों को मूल अधिकारों को प्राप्त किए बगैर, प्राप्त नहीं किया जा सकता।'

तालिका 8.1 *मूल अधिकारों एवं निदेशक तत्वों के मध्य विभेद*

	मूल अधिकार		निदेशक तत्व
1.	ये नकारात्मक हैं जैसा कि ये राज्य को कुछ मसलों पर कार्य करने से प्रतिबंधित करते हैं।	1.	ये सकारात्मक हैं, राज्य को कुछ मसलों पर इनकी आवश्यकता होती है।
2.	ये न्यायोचित होते हैं, इनके हनन पर न्यायालय द्वारा इन्हें लागू कराया जा सकता है।	2.	ये गैर-न्यायोचित होते हैं। इन्हें कानूनी रूप से न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता।
3.	इनका उद्देश्य देश में लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था स्थापित करना है।	3.	इनका उद्देश्य देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है।
4.	ये कानूनी रूप से मान्य हैं।	4.	इन्हें नैतिक एवं राजनीतिक मान्यता प्राप्त है।
5.	ये व्यक्तिगत कल्याण को प्रोत्साहन देते हैं, इस प्रकार ये वैयक्तिक हैं।	5.	ये समुदाय के कल्याण को प्रोत्साहित करते हैं, इस तरह ये समाजवादी हैं।
6.	इनको लागू करने के लिए विधान की आवश्यकता नहीं, ये स्वत: लागू हैं।	6.	इन्हें लागू रखने विधान की आवश्यकता होती है, ये स्वत: लागू नहीं होते।
7.	न्यायलय इस बात के लिए बाध्य है कि किसी भी मूल अधिकार के हनन की विधि को वह गैर-संवैधानिक एवं अवैध घोषित करे।	7.	निदेशक तत्वों का उल्लंघन करने वाली किसी विधि को न्यायालय असंवैधानिक और अवैध घोषित नहीं कर सकता। यद्यपि विधि की वैधता को इस आधार पर सही ठहराया जा सकता है कि इन्हें निदेशक तत्वों को प्रभावी करने के लिए लागू किया गया था।

इस तरह वर्तमान स्थिति में मूल अधिकार, निदेशक तत्व पर उच्चतर हैं फिर भी इसका अभिप्राय यह नहीं है कि निदेशक तत्वों को लागू नहीं किया जा सकता। संसद, निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है। इस संशोधन से संविधान के मूल ढांचे को क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए।

निदेशक तत्वों का क्रियान्वयन

1950 से केंद्र में अनुवर्ती सरकारों एवं राज्य ने निदेशक तत्व को लागू करने के लिए अनेक कार्यक्रम एवं विधियों को बनाया गया। इनका उल्लेख निम्नलिखित है:

1. 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई ताकि देश का विकास नियोजित तरीके से हो सके। अनुवर्ती पंचवर्षीय योजनाओं का उददेश्य समाजार्थिक न्याय प्राप्ति तथा आय, प्रतिष्ठा और अवसर की असमानताओं को कम करना है। 2015 में योजना आयोग के स्थान पर एक निकाय नीति आयोग (नेशनल इंस्टीट्युशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया) की स्थापना की गई।
2. लगभग सभी राज्यों में भू-सुधार कानून पारित किए गए हैं ताकि ग्रामीण स्तर पर कृषि समुदाय स्थिति में सुधार हो सके। इन उपायों में शामिल हैं:
   - (अ) बिचौलियों, जैसे-जमींदार, जागीरदार, ईनामदार आदि को समाप्त किया गया।
   - (ब) किराएदारी सुधार, जैसे-किराएदार की सुरक्षा, उचित किराया आदि।
   - (स) भूमि सीमांकन व्यवस्था।
   - (द) अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण।
   - (ई) सहकारी कृषि।
3. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948), मजदूरी संदाय अधिनियम (1936), बोनस संदाय अधिनियम (1965), ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम (1970), बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियमन) अधिनियम (1986), बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम (1976), व्यवसाय संघ अधिनियम, (1926), कारखाना अधिनियम (1948), खान अधिनियम (1952), औद्योगिक विवाद अधिनियम (1947), कर्मकार प्रतिकार अधिनियम (1923), आदि को श्रमिक वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया है। वर्ष के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया है। वर्ष 2006 में सरकार ने बाल श्रम पर प्रतिबंध लगाया। 2016 में बाल श्रम निषेध एवं विनियमन अधिनियम (1986) का नाम बदलकर बाल एवं किशोर क्रम निषेध एवं विनियमन अधिनियम, 1980 कर दिया गया।
4. प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम (1961) और समान पारिश्रमिक अधिनियम (1976) को महिला कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया।
5. सामान्य वस्तुओं के प्रोत्साहन हेतु वित्तीय संसाधनों के प्रयोग के लिए कुछ पैमाने तय किए गए। इनमें शामिल हैं-जीवन बीमा का राष्ट्रीयकरण (1956), 14 प्रमुख बैंकों का राष्ट्रीयकरण (1969), सामान्य बीमा का राष्ट्रीयकरण (1971), शाही खर्च की समाप्ति (1971) आदि।
6. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम (1987) का राष्ट्रीय स्तर पर गठन किया गया ताकि गरीबों को नि:शुल्क एवं उचित कानूनी सहायता प्राप्त हो सके। इसके अलावा समान न्याय को बढ़ावा देने के लिए लोक अदालतों का गठन किया गया। लोक अदालत सांविधानिक फोरम हैं, जो कानूनी विवाद का निपटारा करते हैं, इन्हें जन अधिकार अदालतों के समान स्तर दिया गया। इनके निर्णय मानने की बाध्यता होती है और इनके फैसले के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई अपील नहीं है।
7. खादी एवं ग्राम उद्योग बोर्ड, खादी एवं ग्राम उद्योग आयोग, लघु उद्योग बोर्ड, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम, हैंडलूम बोर्ड, हथकरघा बोर्ड, कॉयर बोर्ड, सिल्क बोर्ड आदि की ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योग विकास के लिए स्थापना की गई।
8. सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1960), सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम (1973), न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (1974), एकीकृत ग्रामीण विकास योजना (1978), जवाहर रोजगार योजना (1989), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999), संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (2001), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना (2006) आदि को मानक जीवन जीने के उद्देश्य से प्रारंभ किया गया।
9. वन्य जीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 एवं वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980 को वन्य जीवों एवं वनों के लिए सुरक्षा कवच के रूप में प्रभावी बनाया गया। जल एवं वायु अधिनियमों ने केंद्र एवं राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड स्थापित किए, जो पर्यावरण की सुरक्षा एवं सुधार में कार्यरत हैं। राष्ट्रीय वन नीति (1988) का उद्देश्य वनों की सुरक्षा, संरक्षण और विकास करना है।

10. कृषि को आधुनिक बनाया गया, इसमें कृषि उपायों में सुधार के अलावा बीज, खाद एवं सिंचाई सुविधा उपलब्ध कराई गई। पशु चिकित्सा की आधुनिकता के लिए कई कदम उठाए गए।
11. त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था (ग्राम, ताल्लुक एवं जिला स्तर) को चालू किया गया ताकि गांधी जी का सपना कि हर गांव गणतंत्र हो, साकार हो सके। 73वें संशोधन अधिनियम (1992) को इन पंचायती राज संस्थानों को संवैधानिक दर्जा देने के लिए प्रभावी बनाया गया।
12. शैक्षणिक संस्थानों, सरकारी नौकरियों एवं प्रतिनिधि निकायों में अनुसूचित जाति, जनजाति एवं कमजोर वर्गों के लिए सीटों को सुरक्षित किया गया।

    अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1976 नया नाम दिया गया और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 को अनुसूचित जाति एवं जनजाति की सुरक्षा में प्रभावी बनाया गया, ताकि उन्हें शोषण से मुक्ति और सामाजिक न्याय मिले। 65वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1990 के तहत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गई। ताकि उनके हितों की रक्षा हो सके। 89वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2003 ने इस संयुक्त आयोग को दो पृथक निकायों अर्थात राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग में बांट दिया।

12a. अनेक राष्ट्रीय स्तर के आयोगों का गठन समाज के कमजोर वर्गों के सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक हितों के संवर्धन एवं संरक्षण के लिए किया गया है। इनके अंतर्गत शामिल हैं-पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग (1993), राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (1993), राष्ट्रीय महिला आयोग (1992) तथा राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग।

13. आपराधिक प्रक्रिया संहिता (1973) राज्य की लोक सेवा में कार्यकारिणी को विधिक सेवा से विभक्त करती है। इस विभाजन से पूर्व जिला प्राधिकारी जैसे कलेक्टर, उप खंड अधिकारी, तहसीलदार आदि विधिक शक्तियों का इस्तेमाल परंपरागत कार्यकारी शक्तियों के साथ करते थे। विभाजन के बाद विधिक शक्तियों को इन कार्यकारियों से अलग कर जिला न्यायिक मजिस्ट्रेटों के हाथों में सौंप दिया गया है, जो राज्य उच्च न्यायालय के नियंत्रण में काम करते हैं।
14. प्राचीन एवं ऐतिहासिक संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम (1951) को राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों के स्थानों तहत प्रभावी बनाया गया।
15. प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र एवं अस्पतालों को सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार के लिए देश भर में स्थापित किया गया। इसके अलावा खतरनाक बीमारियों जैसे—मलेरिया, टीबी, कुष्ठ, एड्स, कैंसर, फाइलेरिया, कालाजार, गलघोंटू, जापानी बुखार आदि को समाप्त करने के लिए विशेष योजनाएं प्रारंभ की गईं।
16. कुछ राज्यों में गायों, बछड़ों और बैलों को काटने पर कानूनी प्रतिबंध लगाया गया।
17. कुछ राज्यों में 65 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों के लिए तात्कालिक वृद्धावस्था पेंशन शुरू की गई।
18. भारत ने गुट निरपेक्ष नीति एवं पंचशील की नीति को अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बढ़ावा देने के लिए अपनाया।

केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा उपरोक्त कदम उठाए जाने के बावजूद निदेशक तत्व को पूर्ण एवं प्रभावी तरीके से लागू नहीं किया जा सका। इसके कारण हैं—अपर्याप्त वित्तीय संसाधन, प्रतिकूल सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति, जनसंख्या विस्फोट केंद्र-राज्य-तनावपूर्ण संबंध आदि।

भाग IV से बाहर के निदेश

भाग IV में उल्लिखित निदेशो के अतिरिक्त संविधान के अन्य भागों में भी कई निदेश दिये गये हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:

1. **सेवाओं के लिए अनुसूचित जातियों और जनजातियों के दावे :** संघ या किसी राज्य के कार्यकलाप से संबंधित सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तियां करने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों का, प्रशासन की दक्षता बनाए रखने की संगति के अनुसार ध्यान रखा जाएगा (भाग 16 में अनुच्छेद 325)।
2. **मातृभाषा में शिक्षा:** प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा (भाग 17 में अनुच्छेद 350 क में)।

3. **हिंदी भाषा का विकास:** संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामायिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके (भाग 17 में अनुच्छेद 351)।

उक्त निर्देश भी प्रकृति में न्याय योग्य नहीं हैं। हालांकि, न्यायालय द्वारा इन्हें भी अन्य निर्देशों के समान, उतना ही महत्व दिया जाता है तथा उन्हें भी संविधान का भाग माना जाता है।

तालिका 8.2 *नीति निदेशक सिद्धांतों से सम्बन्धित अनुच्छेद: एक नजर में*

अनुच्छेद संख्या	विषय-वस्तु
36.	राज्य की परिभाषा
37.	इस भाग में समाहित सिद्धांतों को लागू करना।
38.	राज्य द्वारा जन-कल्याण के लिए सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देना
39.	राज्य द्वारा अनुसरण किये जाने वाले कुछ नीति-सिद्धांत
39.A	समान न्याय एवं नि:शुल्क कानूनी सहायता
40.	ग्राम पंचायतों का संगठन
41.	कुछ मामलों में काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार तथा सार्वजनिक सहायता
42.	न्यायोचित एवं मानवीय कार्य दशाओं तथा मातृत्व सहायता के लिए प्रावधान।
43.	कर्मचारियों को निर्वाह वेतन आदि
43.A	उद्योगों के प्रबंधन में कर्मचारियों को सहभागिता
43.B.	सहकारी समितियों को प्रोत्साहन
44.	नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता
45.	बालपन-पूर्व देखभाल तथा 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों की शिक्षा
46.	अनु. जाति, अनु. जनजाति का कमजोर वर्गों के शैक्षिक, तथा आर्थिक हितों को बढ़ावा देना
47.	पोषाहार का स्तर बढ़ाने, जीवन स्तर सुधारने तथा जन-स्वास्थ्य की स्थिति बेहतर करने सम्बन्धी सरकार का कर्त्तव्य।
48.	कृषि एवं पशुपालन का संगठन
48.A	पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन तथा वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा
49.	स्मारकों, तथा राष्ट्रीय महत्व के स्थानों एवं वस्तुओं का संरक्षण
50.	न्यायपालिका का कार्यपालिका से अलगाव
51.	अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को प्रोत्साहन

संदर्भ सूची

1. वास्तव में निदेशक तत्वों को अनुच्छेद 38 से 51 में वर्णित किया गया है। अनुच्छेद 36 राज्य की परिभाषा को बताता है तो अनुच्छेद 37 निदेशक तत्व के महत्व व प्रकृति को।
2. ग्रेनविल ऑस्टिन, *द इंडियन कांस्टीट्यूशन कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन,* ऑक्सफोर्ड, 1966, पृष्ठ 75।

3. एक 'पुलिस राज्य' मुख्यत: बाहरी आक्रमण से देश के बचाव एवं कानून एवं व्यवस्था बनाये रखने से मुख्यत: संबंधित है। राज्य के इस तरह के प्रतिबंधित स्वरूप 19वीं सदी के व्यक्तिवाद या सरकार के वाणिज्य में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत पर आधारित थे।
4. यह दूसरी व्यवस्था 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा जोड़ी गई।
5. अंतिम बिंदु (च) को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा परिवर्तित किया गया।
6. इस सिद्धांत को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।
7. 'जीविका मजदूरी', 'न्यूनतम मजदूरी' से भिन्न है। इसमें शामिल हैं-जीवन यापन के लिए आवश्यक चीजें, जैसे-भोजन, घर एवं कपड़ा। इसके अतिरिक्त 'जीविका मजदूरी' में शामिल हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य, बीमा आदि। एक 'उचित मजदूरी', उक्त दो का औसत है।
8. यह सिद्धांत 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।

8a. यह निर्देशिका 97 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2011 द्वारा जोड़ी गई थी।

9. इस सिद्धांत को 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा बदला गया। मूलत: इसमें 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई थी।
10. इस मार्गदर्शक को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।
11. *कांस्टीट्यूट असेंबली डिबेट्स,* खंड-7 पृष्ठ 476
12. एम.पी. जैन, *इंडियन कांस्टीट्यूशनल लॉ,* वाधवा तृतीय संस्करण (1978) पृ. 595
13. *कांस्टीट्वेंट असेंबली डिबेट्स* खंड-7 पृष्ठ 470
14. एन. श्रीनिवासन *डेमोक्रेटिक गवर्नमेंट इन इंडिया,* पृष्ठ 182
15. सर आइवर जेनिंग्स, *सम करैक्टरिस्टिक ऑफ द इंडियन कांस्टीट्यूशन,* 1953, पृष्ठ 31-33
16. *जर्नल ऑफ कांस्टीट्यूशनल एंड पार्लियामेंट्री स्टडीज,* जून 1975।
17. एम.सी. चागला, *एन. अंबेसडर स्पीक्स,* पृष्ठ 35।
18. ग्रेनविले आस्टिन, द *इंडियन कांस्टीट्यूशन कॉर्नरस्टोन ऑफ ए नेशन,* ऑक्सफोर्ड 1966 पृष्ठ 50-52
19. पी.वी. गजेन्द्र गडकर, द *कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया (इट्स फिलास्पी एंड पास्ट्यूलेट्स)* पृष्ठ 11
20. *मद्रास राज्य* बनाम *चंपकम दोराईराजन* (1951)।
21. *गोलकनाथ* बनाम *पंजाब राज्य* (1967)।
22. अनुच्छेद 39(ख) अनुसार—राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो।
23. अनुच्छेद 39(ग) अनुसार—'राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।'
24. *केशवानंद भारती* बनाम *केरल राज्य* (1973)।
25. *मिनर्वा मिल्स* बनाम *भारत संघ* (1980)।